प्रमाणफल चर्चा

दार्शनिकक्षेत्रमें प्रमाण और उसके फलकी चर्चा भी एक खास स्थान रखती है। यों तो यह विषय तर्कयुगके पहिले श्रुति-आगम युगमें भी विचारप्रदेशमें आया है। उपनिषदों, पिटकों और आगमोंमें ज्ञान—सम्यग्ज्ञान—के फलका कथन है। उक्त युगमें वैदिक, बौद्ध, जैन सभी परम्परामें ज्ञानका फल अविद्या-नाश या वस्तुविषयक अधिगम कहा है पर वह आध्यात्मिक दृष्टिसे—अर्थात् मोक्ष लाभकी दृष्टिसे। उस अध्यात्म युगमें ज्ञान इसीलिए उपादेय समझा जाता था कि उसके द्वारा अविद्या—अज्ञान—का नाश होकर एवं वस्तुका वास्तविक बोध होकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त हो[1], पर तर्कयुगमें यह चर्चा व्यावहारिक दृष्टिसे भी होने लगी, अतएव हम तर्कयुगमें होनेवाली-प्रमाणफलविषयक चर्चामें अध्यात्मयुगीन अलौकिक दृष्टि और तर्कयुगीन लौकिक दृष्टि दोनों पाते हैं[2]। लौकिक दृष्टिमें केवल इसी भावको सामने रखकर प्रमाणके फलका विचार किया जाता है कि प्रमाणके द्वारा व्यवहारमें साक्षात् क्या सिद्ध होता है, और परम्परासे क्या, चाहे अन्तमें मोक्षलाभ होता हो या नहीं। क्योंकि लौकिक दृष्टिमें मोक्षानधिकारी पुरुषगत प्रमाणोंके फलकी चर्चाका भी समावेश होता है।

तीनों परम्पराकी तर्कयुगीन प्रमाणफलविषयक चर्चामें मुख्यतया विचारणीय अंश दो देखे जाते हैं—एक तो फल और प्रमाणका पारस्परिक भेद-अभेद और दूसरा फलका स्वरूप। न्याय, वैशेषिक, मीमांसक आदि वैदिक दर्शन फलको प्रमाणसे भिन्न ही मानते हैं[3]। बौद्ध दर्शन उसे अभिन्न कहता है[4] जब

---

१ 'सोऽविद्याग्रन्थि विकरतीह सौम्य'—मुण्डको० २. १. १०। सांख्यका० ६७-६८। उत्त० २८. २, ३। 'तमेतं वुच्चति—यदा च आत्वा सो धम्मं सच्चानि अभिसमेस्सति। तदा अविज्जूपसमा उपसन्तो चरिस्सति॥'—विसुद्धि० पृ० ५४४।

२ '...तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम्'—वै० सू० १. १. ३। '...तत्त्वज्ञानान्निः-श्रेयसाधिगमः'—न्यायसू० १. १. १। 'यदा सन्निकर्षस्तदा ज्ञानं प्रमितिः, यदा ज्ञानं तदा हानोपादानोपेक्षाबुद्धयः फलम्'—न्यायभा० १. १. ३।

३ श्लोकवा० प्रत्यक्ष० श्लो० ७४, ७५।

४ प्रमाणसमु० १. ६। न्यायबि० टी० १. २१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि जैन दर्शन अपनी अनेकान्त प्रकृतिके अनुसार फल-प्रमाणका भेदाभेद बतलाता है[1]।

फलके स्वरूपके विषय में वैशेषिक, नैयायिक और मीमांसक सभीका मन्तव्य एक-सा ही है[2]। वे सभी इन्द्रियव्यापारके बाद होनेवाले सन्निकर्षसे लेकर हानोपादानोपेक्षाबुद्धि तकके क्रमिक फलोंकी परम्पराको फल कहते हुए भी उस परम्परामेंसे पूर्व पूर्व फलको उत्तर उत्तर फलकी अपेक्षासे प्रमाण भी कहते हैं अर्थात् उनके कथनानुसार इन्द्रिय तो प्रमाण ही है, फल नहीं और हानोपादानोपेक्षाबुद्धि जो अन्तिम फल है वह फल ही है प्रमाण नहीं। पर बीचके सन्निकर्ष, निर्विकल्प और सविकल्प ये तीनों पूर्व प्रमाणकी अपेक्षासे फल और उत्तरफल की अपेक्षासे प्रमाण भी हैं। इस मन्तव्यमें फल प्रमाण कहलाता है पर वह स्वभिन्न उत्तरफलकी अपेक्षासे। इस तरह इस मतमें प्रमाण-फलका भेद स्पष्ट ही है। वाचस्पति मिश्र ने इसी भेदको ध्यानमें रखकर सांख्य प्रक्रियामें भी प्रमाण और फलकी व्यवस्था अपनी कौमुदीमें की है[3]।

बौद्ध परम्परामें फलके स्वरूपके विषयमें दो मन्तव्य हैं—पहला विषयाधिगम को और दूसरा स्वसंवित्तिको फल कहता है। यद्यपि दिङ्नागसंगृहीत[4] इन दो मन्तव्योंमेंसे पहलेका ही कथन और विवरण धर्मकीर्ति[5] तथा उनके टीकाकार धर्मोत्तरने किया है तथापि शान्तरक्षितने उन दोनों बौद्ध मन्तव्योंका संग्रह करनेके अलावा उनका सयुक्तिक उपपादन और उनके पारस्परिक अन्तरका प्रतिपादन भी किया है। शान्तरक्षित और उनके शिष्य कमलशीलने यह स्पष्ट बतलाया है कि बाह्यार्थवाद, जिसे पार्थसारथि मिश्र ने सौत्रान्तिकका कहा है उसके मतानुसार ज्ञानगत विषयसारूप्य प्रमाण है और विषयाधिगति फल, जब कि विज्ञानवाद जिसे पार्थसारथिने योगाचारका कहा है उसके मतानुसार ज्ञानगत

---

१ 'करणस्य क्रियायाश्च कथंचिदेकत्वं प्रदीपतमोविगमवत् नानात्वं च परश्वादिवत्'—अष्टश० अष्टस० पृ० २८३-२८४

२ 'यदा सन्निकर्षस्तदा ज्ञानं प्रमितिः, यदा ज्ञानं तदा हानोपादानोपेक्षाबुद्धयः फलम्।'—न्यायभा० १. १. ३। श्लोकवा० प्रत्यक्ष० श्लो० ५६-७३। प्रकरणप० पृ० ६४। कन्दली पृ० १६८-६।

३ सांख्यत० का० ४।

४ प्रमाणसमु० १. १०-१२। श्लो० न्याय० पृ० १५८-१५६।

५ न्यायबि० १. १८-१६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वसंवेदन ही फल है और ज्ञानगत तथाविध योग्यता ही प्रमाण है[1]। यह ध्यानमें रहे कि बौद्ध मतानुसार प्रमाण और फल दोनों ज्ञानगत धर्म हैं और उनमें भेद न माने जानेके कारण वे अभिन्न कहे गए हैं। कुमारिल ने इस बौद्धसम्मत अभेदवादका खण्डन (श्लोकवा० प्रत्यक्ष० श्लो० ७४ से) करके जो वैशेषिक-नैयायिकके भेदवादका अभिमतरूपसे स्थापन किया है उसका जवाब शान्तरक्षितने अक्षरशः देकर बौद्धसम्मत अभेदभावकी युक्तियुक्तता दिखाई है—(तत्वसं० का० १३४० से)।

जैन परम्परामें सबसे पहिले तार्किक सिद्धसेन और समन्तभद्र ही हैं जिन्होंने लौकिक दृष्टिसे भी प्रमाणके फलका विचार जैन परम्पराके अनुसार व्यवस्थित किया है। उक्त दोनों आचार्योंका फलविषयक कथन शब्द और भावमें समान ही है—(न्याया० का० २८, आप्तमी० का० १०२)। दोनोंके कथनानुसार प्रमाणका साक्षात् फल तो अज्ञाननिवृत्ति ही है। पर व्यवहित फल यथासम्भव हानोपादानोपेक्षाबुद्धि है। सिद्धसेन और समन्तभद्रके कथनमें तीन बातें ध्यान देने योग्य हैं—

१—अज्ञानविनाशका फलरूपसे उल्लेख, जिसका वैदिक-बौद्ध परम्परामें निर्देश नहीं देखा जाता। २—वैदिक परम्परामें जो मध्यवर्ती फलोंका सापेक्ष भावसे प्रमाण और फल रूपसे कथन है उसके उल्लेखका अभाव, जैसा कि बौद्ध तर्कग्रन्थोंमें भी है। ३—प्रमाण और फलके भेदाभेद विषयक कथनका अभाव। सिद्धसेन और समन्तभद्रके बाद अकलङ्क ही इस विषयमें मुख्य देखे जाते हैं जिन्होंने सिद्धसेन-समन्तभद्रदर्शित फलविषयक जैन मन्तव्यका संग्रह करते हुए उसमें अनिर्दिष्ट दोनों अंशोंकी स्पष्टतया पूर्ति की, अर्थात् अकलङ्कने प्रमाण और फलके भेदाभेदविषयक जैन मन्तव्यको स्पष्टतया कहा (अष्टश० अष्टस० पृ० २८३-४) और मध्यवर्ती फलोंको प्रमाण तथा फल उभयरूप कहनेकी वैशेषिक, नैयायिक, मीमांसककी सापेक्ष शैलीको जैन प्रक्रियाके अनुसार घटाकर उसका स्पष्ट निर्देश किया[2]। माणिक्यनन्दी (परी० ५; १. से) और देवसूरिने (प्रमाणन० ६. ३ से) अपने-अपने सूत्रोंमें प्रमाणका फल बतलाते हुए सिर्फ वही बात कही

---

१ 'विषयाधिगतिश्चात्र प्रमाणफलमिष्यते। स्वचित्तिर्वा प्रमाणं तु सारूप्यं योग्यतापि वा ॥'—तत्त्वसं० का० १३४४। श्लो० न्याय० पृ० १५८-१५६।

२ 'बह्वाद्यवग्रहाद्यष्टचत्वारिंशत् स्वसंविदाम्। पूर्वपूर्वप्रमाणत्वं फलं स्यादुत्तरोत्तरम् ॥'—लघी० १. ६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है जो सिद्धसेन और समन्तभद्रने। अलबत्ता उन्होंने अकलङ्कनिर्दिष्ट प्रमाण-फलके भेदाभेदका जैन मन्तव्य सूत्रित किया है पर उन्होंने मध्यवर्ती फलोंको सापेक्षभावसे प्रमाण और फल कहनेकी अकलङ्कसूचित जैन-शैलीको सूत्रित नहीं किया। विद्यानन्दकी तीक्ष्ण दृष्टि अज्ञाननिवृत्ति और स्व-परव्यवसिति शब्दकी ओर गई। योगाचार और सौत्रान्तिक सिद्धान्तके अनुसार प्रमाणके फलरूपसे फलित होनेवाली स्व और पर व्यवसितिको ही विद्यानन्दने अज्ञाननिवृत्तिरूप बतलाया (तत्त्वार्थश्लो० पृ० १६८; प्रमाणप० पृ० ७६) जिसका अनुसरण प्रभाचन्द्रने मार्तण्डमें और देवसूरिने रत्नाकरमें किया। अब तकमें जैनतार्किकोंका एक स्थिर-सा मन्तव्य ही हो गया कि जिसे सिद्धसेन-समन्तभद्रने अज्ञाननिवृत्ति कहा है वह वस्तुतः स्व-परव्यवसिति ही है।

आ० हेमचन्द्रने प्रस्तुत चर्चामें पूर्ववर्ती सभी जैमतार्किकोंके मतोंका संग्रह तो किया ही है पर साथ ही उसमें अपनी विशेषता भी दिखाई है। उन्होंने प्रभाचन्द्र और देवसूरिकी तरह स्व-परव्यवसितिको ही अज्ञाननिवृत्ति न कहकर दोनोंको अलग-अलग फल माना है। प्रमाण और फलके अभेद पक्षमें कुमारिल ने बौद्धोंके ऊपर जो दोष दिये थे और जिनका निरास धर्मोत्तरकी न्यायबिन्दु-व्याख्या तथा शान्तरक्षितके तत्त्वसंग्रहमें है उन्हीं दोषोंका निवारण बौद्ध ढंगसे करते हुए भी आ० हेमचन्द्रने अपना वैयाकरणत्व आकर्षक तार्किकशैलीमें व्यक्त किया है। जैसे अनेक विषयोंमें आ० हेमचन्द्र अकलङ्कका खास अनुसरण करते हैं वैसे ही इस चर्चामें भी उन्होंने मध्यवर्ती फलोंको सापेक्षभावसे प्रमाण और फल कहनेवाली अकलङ्कस्थापित जैनशैलीको सूत्रमें शब्दशः स्थान दिया। इस तरह हम प्रमाण-फलके चर्चाविषयक प्रस्तुत सूत्रोंमें वैदिक, बौद्ध और जैन सभी परम्पराओंका यथासम्भव जैनमत रूपसे समन्वय एक ही जगह पाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org